

व्यक्ति एवं विचार



Azim Premji
University



टैगोर - प्रज्ञाता का जीवन

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय प्रकाशन



Azim Premji
University

सभी आलेख :

रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनाएं (मौलिक और अनुदित)

कॉनसेप्ट एवं डिजाइन :

जयश्री नायर— मिश्रा

हिन्दी अनुवाद :

रंजना

चित्रांकन :

विश्वजीत मनीमारन, सृष्टि स्कूल, बैंगलोर

प्रकाशन :

अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय

Website : www.azimpremjiuniversity.edu.in

प्रिंटिंग:

एस सी पी एल

2/1 जे सी इण्डस्ट्रीयल एस्टेट, येलचैनहल्ली, कनकपुरा रोड, बैंगलौर-560062, भारत

फोन +91 80 26860585, 26860671, 65833033, 9880872184

फेक्स +91 80 26860501

www.scpl.net

टैगोर – प्रज्ञता का जीवन

अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय प्रकाशन



अपने बचपन में जितनी भी किताबें हमें मिलीं हमने सबको पूरा-पूरा पढ़ा। उसमें कुछ बातें हम समझ पाए और कुछ नहीं, लेकिन दोनों ही बातें हमें प्रभावित करती रहीं।

- रवीन्द्रनाथ टैगोर



सागरतट

● इस सागर तट पर
अछोर गतिहीन आकाश के नीचे
मिलीं अनंत भुवन की संततियां
और दुनिया के इस तुमुलनाद करते
सागर तट पर संततियों ने किया गायन और नर्तन
माटी से बनाए घर
और चुनते रहे रीते शंख-सीपियां
बिखरी पत्तियों से बुनीं नौकाएं
और मुस्काते तैराया उनको विस्तृत गहराई पर
और रचाया खेल सागर तट के भू-भागों पर ।

- रवीन्द्रनाथ टैगोर

प्रस्तावना

अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की 'व्यक्ति एवं विचार' श्रृंखला, उन बहुत से समाज सुधारकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं शिक्षाशास्त्रियों के विचारों, जीवन और कार्यों पर शोध का प्रयास है जिन्होंने हमारे जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। हमें आशा है कि इस प्रयास के दौरान हम अपने दृष्टिकोण एवं दर्शन को मूल आकार देने वाले विचारों को समझने और उस पर विमर्श में संलग्न रहने का एक मंच विकसित कर पाएंगे।

हम रवींद्रनाथ टैगोर के शिक्षा संबंधी विचारों और दर्शन पर आधारित एक सचित्र रचना के साथ यह श्रृंखला प्रारंभ कर रहे हैं। टैगोर ने अपनी सभी रचनाओं में इस बात को अभिव्यक्त किया कि एक पारंपरिक विद्यालय से दूसरे में जाते हुए और उसी तरह शिक्षकों के पढ़ाए जाने पर उन्हें कभी आनंद नहीं आया। शिक्षा के प्रति उनकी समझ उनके जीवन अनुभवों से विकसित हुई। शांतिनिकेतन में उन्होंने जो विद्यालय स्थापित किया, उसकी धारणा छात्रों के मस्तिष्क को खुला छोड़ने और उन्हें क्रियात्मक इकाई की स्थिति में ले जाने की थी, जहां वे नस्ल और जाति के भेद के बिना मानवता का सम्मान करें।

टैगोर ने प्रकृति के साथ कक्षा को एकाकार करके अपने छात्रों के बीच ज्ञानार्जन का आनंद भरने का प्रयास किया। विश्व भारती के अनेक समारोहों की प्रकल्पना अपने छात्रों को उनके चारों ओर विद्यमान प्राकृतिक एवं मानव विश्व के बारे में, सामूहिक गतिविधियों एवं सामुदायिक संलिप्तता के बारे में शिक्षित करने के लिए की गई थी। सपना पूरे मानवीय विकास के संपोषण का था जहां हर बच्चे की अनुपम क्षमता सुखद एवं सुरक्षित वातावरण में स्वाभाविक रूप से निखर सके।

अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय ने इस असाधारण मानव एवं शिक्षाशास्त्री के चिरस्थायी दृष्टिकोण को, उनकी बाल्यावस्था, उनके विचारों और उनके विश्वास की झलकियों (अधिकांशतः उनके अपने शब्दों में) को सामने लाने का प्रयास किया है।

इस चित्रित रचना के मूलपाठ मुख्यतः टैगोर के स्वयं के आत्मकथात्मक लेखों, मौलिक और अनूदित, दोनों से चयनित हैं। इस चित्रित रचना का प्रमुख संदर्भ और प्रस्तुत सामग्री का बहुत कुछ स्रोत टैगोर पर उमादास गुप्त की कृति 'मेरे शब्दों में मेरा जीवन' है।

इस पुस्तक के सभी चित्र चित्रकला के एक युवा छात्र ने बनाए हैं तथा फोटो के स्रोत रवींद्र भवन संग्रहालय, विश्वभारती, शांति निकेतन हैं। एक संवेदनशील एवं सशक्त सृष्टा के मनोजगत पर शोध व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए एक प्रेरक-यात्रा रही है।

टैगोर सर्वकालिक शिक्षक हैं और उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं, जितने उनके जीवनकाल में थे। ऐसी तेजस्वी विभूतियों के जीवन और विचार हमारे शिक्षकों, हमारे विद्यार्थियों और समाज के मनोभावों को प्रभावित कर सकते हैं, बौद्धिकता को प्रेरित कर सकते हैं और परिवर्तन की प्रक्रिया को तेज कर सकते हैं। हम आशा करते हैं कि 'व्यक्ति एवं विचार' पहल इस अमूल्य धरोहर को जीवित रखने में अपनी लघु भूमिका निभाएगी।

- जयश्री नायर-मिश्रा

अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बंगलूरु

आंदोलनों की धाराएं

1860 के दशक में बंगाल में अनेक समानांतर आंदोलन चल रहे थे। राजा राममोहन राय ने रूढ़ीवादी धार्मिक विचारों पर सवाल खड़े करने शुरू किए और आध्यात्मिक जीवन की ऐसी धाराएं उद्घाटित कर दीं जिन्हें वर्षों तक दबाकर रखा गया था। इसमें उन्हें मेरे पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर का पर्याप्त समर्थन मिला।

यह साहित्यिक नवजागरण का समय था। बंकिम चंद्र चटर्जी आधुनिक बंगाली गद्य की रचना कर रहे थे और बंगाली साहित्य में इंद्रजाल को लौटा रहे थे।

यह राष्ट्रीयतावादी पुनर्जागरण का समय था - राजनीतिक मर्मराहटें, राष्ट्रीयतावादी भावनाएं, एकता का अनुभव, हर भारतीय चीज़ पर गर्व, कुल जमा एक राष्ट्र का उदय हो रहा था। यह भारतीय मानस की अभिव्यक्ति और उसकी अपनी पहचान के फलने-फूलने की शुरुआत थी।



1860 में कोलकता



एक बालक के रूप में

हमारे परिवार में कुछ कथनीय विलक्षणता थी। सभी लेखन, कला, संगीत एवं नाट्य कला में निपुण थे। हमारा परिवार राजनीतिक रूप से जागरूक, सामाजिक रूप में आधुनिक और विभिन्न संस्कृतियों के संगम से समृद्ध था। ऐसे उदारवादी, मानवतावादी परिवार में मेरा जन्म कोलकता के जोड़ासांको में 7 मई, 1861 को हुआ था।

हमारे परिवार में परंपरागत रीति-रिवाज नहीं होते थे। एक बालक के रूप में मैंने उपनिषदों के श्लोकों का शुद्ध उच्चारण के साथ वाचन सीखा। आध्यात्मिकता हमारे परिवार के मूल में थी, लेकिन उसमें कुरीतियां और पारंपरिक रीति-रिवाज शामिल नहीं थे। मेरे पिता का आध्यात्मिक जीवन शांत एवं संयमित था।

हमारे परिवार की आदर्शप्रियता ने हमें बोलने, सोचने और सृजनशीलता की स्वतंत्रता दी। मैं ऐसे वातावरण में बड़ा हुआ जहां बंगाली साहित्य, संगीत तथा कला का पोषण हो रहा था। साथ ही विदेशी भाषाओं, रीतियों तथा जीवनशैली का भी सम्मान था।

जोड़ासांको, हमारा पारिवारिक घर हिन्दू, मुस्लिम और पाश्चात्य संस्कृतियों का संगम था।

सालाना हिंदू मेले हमारे परिवार के संरक्षण में होते थे। इन मेलों में हमारे देश को मातृभूमि के रूप में बताया जाता। हर साल मातृभूमि को कविता, गीत, नृत्य, स्वदेशी कला एवं शिल्प के माध्यम से गौरवान्वित किया जाता।



बकिम चंद्र चटर्जी ने आधुनिक बंगाली गद्य की रचना की और बांग्ला लेखन में इंद्रजाल को वापस लाए। मेरे परिवार ने स्वदेशी कृतियों के प्रति प्रेम पैदा करने के माध्यम के रूप में इसका जबर्दस्त समर्थन किया।

मेरे पिता ने रूढ़ीवादी धार्मिक विचारों के खिलाफ राजा राममोहन राय के आंदोलन का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया।

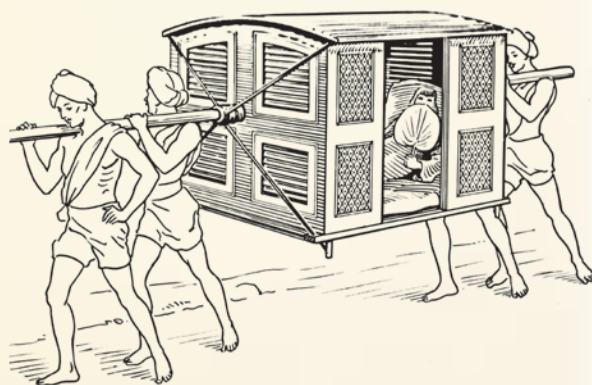


मेरा बचपन पुरातन नियम से बंधा नहीं था।
बावजूद इसके मेरी युवा सृजनशीलता प्राचीन नियमों
की बेवजह मुखालफत नहीं करती थी। मेरी नजर में,
यह दुनिया हमेशा से आश्चर्य और अवर्णनीयता से
भरपूर रही है। दुनिया के प्रति मेरी नैसर्गिक प्रतिक्रिया
मेरे बचपन का अभिन्न हिस्सा थी।



खिड़की से झांकते हुए मैं घर का काम करने वाली परी को कमर पर मटका
लाते हुए या पानी लाने वाले दुखी को अपने कंधे पर बहंगी से गंगाजल
लाते हुए देख सकता था। हर दिन भीख के लिए भिखारियों की भीड़
इंतजार करती थी।

मेरे भाई मुझसे बहुत बड़े थे। जब मेरा जन्म हुआ, द्विजेंद्रनाथ 21 साल के थे, सत्येंद्रनाथ 19, हेमेंद्रनाथ 17 और ज्योतिन्द्रनाथ 13 साल के थे। मेरे चारों बड़े भाइयों का मुझ पर बहुत प्रभाव था। एक बड़े और परंपरागत भारतीय परिवार की तरह- मैं मुश्किल से ही अपने माता और पिता को देख पाता। मुझे और मेरे भाइयों को नौकर ही जगाते थे। घर के कुछ हिस्सों में हम बच्चों के जाने पर रोक थी फिर भी मैं खिड़कियों से झांककर 'बाहर' की चीजें देखकर खुद को खुश कर लेता। मुझे बाहर के दृश्य, आवाजें और सुगंध बेइंतहा लुभाते। मेरा बचपन बड़े इत्मीनान से बीता। मैं 7-8 साल का रहा होऊंगा। उस समय, मैं अक्सर लंबे समय से हिसाबघर के कोने में उपेक्षित पड़ी पालकी में छिप जाता, ताकि तांक-झांक करने वालों को बिल्कुल भी दिखाई न दूं। तब मैं अपनी काल्पनिक यात्रा पर निकल जाता था, दूर अनजान भूमि से गुजरता हुआ। मेरी पालकी मयूर-नाव बनकर सागर पर तब तक तैरती, जब तक कि तट दिखाई नहीं देता।





जानेमाने एक आंख वाले एक पहलवान
ने मुझे शीतक्रतु के ऊषा काल में कुश्ती
सिखाई।



अपने विद्यालय के दिनों की ऊब को मैं



कभी आसमान में उड़ती पतंगे
देखकर तोड़ता

कभी भालू का नाच देखकर।

बालपन के दिन



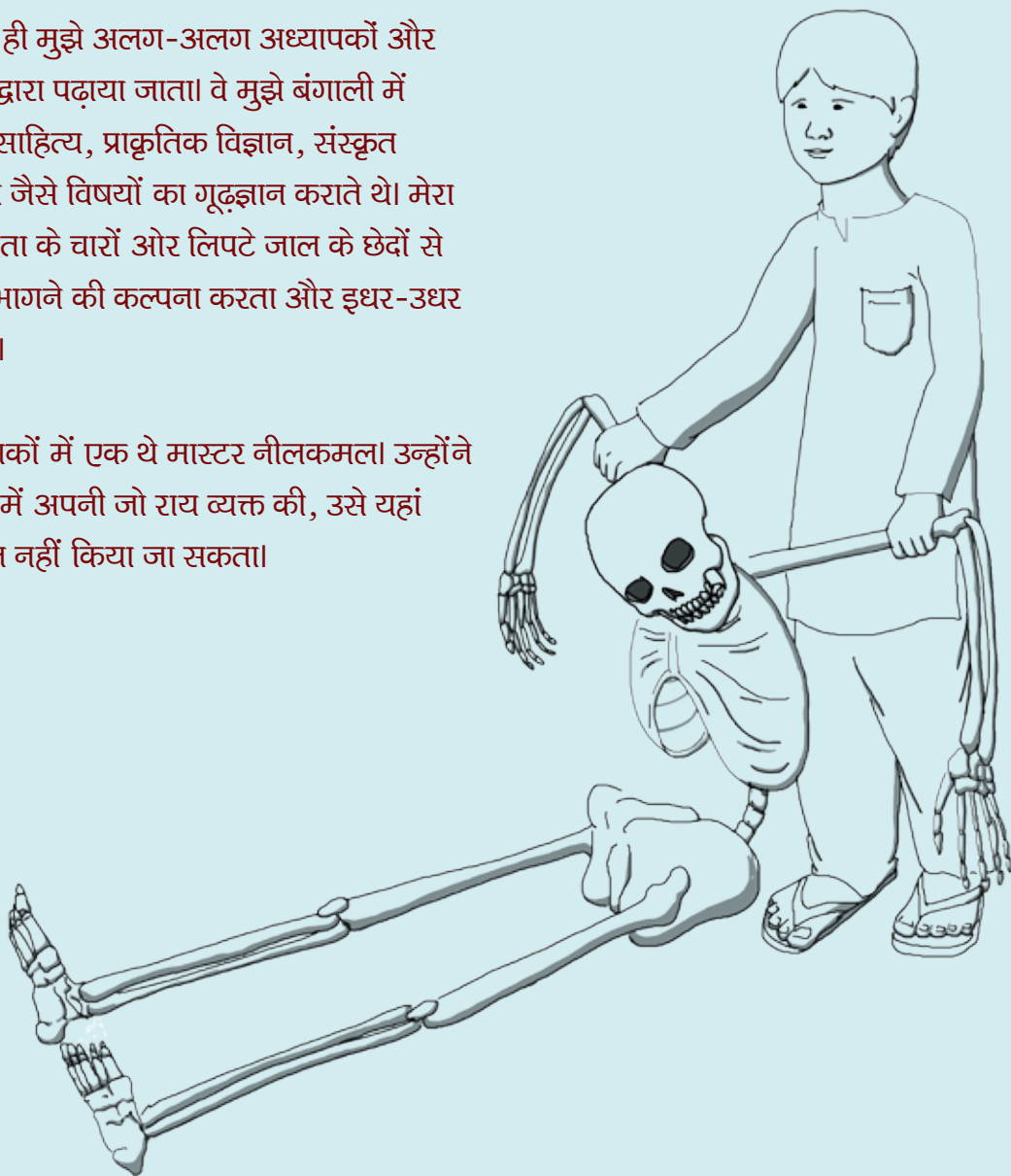
गेंद और बल्ला खेलते बालक या
अपना लददू घुमाता बालक

यह वो दिन थे जब मैं काल्पनिक छात्रों के साथ खुद को शिक्षक मान लेता। उनमें कुछ छात्र बहुत शरारती थे और अपनी पुस्तकों की कोई चिंता नहीं करते थे। मैंने उनको गंभीर धमकियां दीं लेकिन उन्हें शरारत करने से कभी नहीं रोक सका क्योंकि सच कहूं तो यहीं मेरे खेल का अंत होता था।

मुझे खाली गोलाबाड़ी या खलिहान में समय बिताना भी पसंद था जहां पहले अनाज की वार्षिक फसल का भंडार होता था। शायद, इस खाली और अप्रयुक्त जमीन का घर के दूर उत्तर में होना मेरे लिए आकर्षण का कारण था। गोलाबाड़ी मेरी बालकल्पनाओं के लिए मुक्त साम्राज्य देती थी।

सुबह से ही मुझे अलग-अलग अध्यापकों और विद्वानों द्वारा पढ़ाया जाता। वे मुझे बंगाली में गणित, साहित्य, प्राकृतिक विज्ञान, संस्कृत व्याकरण जैसे विषयों का गूढ़ज्ञान कराते थे। मेरा मन विद्वता के चारों ओर लिपटे जाल के छेदों से निकल भागने की कल्पना करता और इधर-उधर भटकता।

मेरे शिक्षकों में एक थे मास्टर नीलकमल। उन्होंने मेरे बारे में अपनी जो राय व्यक्त की, उसे यहां प्रकाशित नहीं किया जा सकता।



चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय का एक छात्र मुझे कंकाल की सहायता से अस्थियों का ज्ञान कराता! अस्थियां हिलतीं और खड़खड़ातीं। मुझे डर लगता लेकिन वह निरंतर उन्हें धामने, और उनके लंबे, मुश्किल नामों को याद करने से दूर हो गया।

मेरा शुरुआती सीखना नौकरों के घरों में रामायण सुनते हुए और अपनी दादी मां से शाम को कहानियां सुनते हुए हुआ।

कविता-कहानियों को पढ़ने और सुनने ने मुझे सत्य के यथार्थ, अस्तित्व की संगति के प्रति जागृत किया।



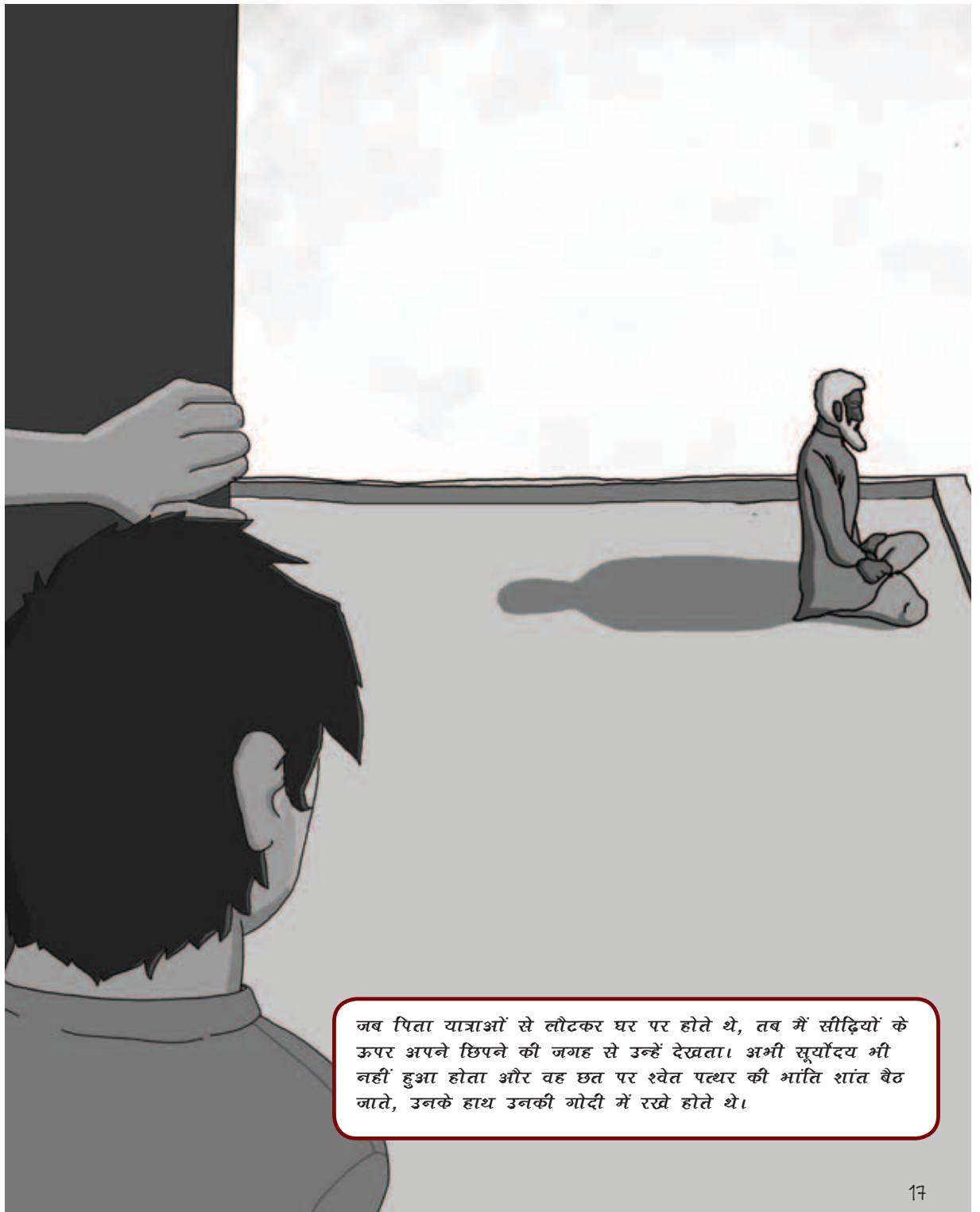
मेरा संध्याकाल जिम्नास्टिक और चित्रकला एवं उसके बाद अंग्रेजी सीखने में व्यतीत होता था। जब तक मेरी पलकें थकनें नहीं लगती, तब तक मुझे बिस्तर में जाने की अनुमति नहीं दी जाती थी। अक्सर मैं एक राजा के बेटे के बारे में कहानियां सुनते-सुनते सो जाता था जो एक अंतहीन, राहविहीन मैदान में यात्रा करता है।

पिता के साथ यात्राएं

मेरे और पिता के बीच बहुत कम बातचीत होती थी, क्योंकि वे अपने काम के सिलसिले में अक्सर यात्राएं करते थे। लेकिन मैंने हमेशा उनकी उपस्थिति का अनुभव किया, क्योंकि वे घर की व्यवस्थाओं और हाल-चाल को लेकर तब भी बहुत सतर्क रहते थे, जब वे यात्रा पर होते थे।

मेरे यज्ञोपवीत संस्कार के बाद मेरे पिता ने मुझे अपने साथ हिमालय की लंबी यात्रा पर चलने के लिए कहा - लेकिन पहले पूछा कि मैं चलना पसंद करूंगा या नहीं। अब मुझे लगता है कि मेरे पिता एक ११ वर्ष के बालक की पसंद और उसके नजरिये का भी सम्मान करते थे।

पलट कर देखता हूं तो यह देशाटन मेरी प्रज्ञा में मील का पत्थर, मेरे युवा जीवन का महत्वपूर्ण मोड़ और मेरी भावी दुनिया का वातायन सिद्ध हुआ।



जब पिता यात्राओं से लौटकर घर पर होते थे, तब मैं सीढ़ियों के ऊपर अपने छिपने की जगह से उन्हें देखता। अभी सूर्योदय भी नहीं हुआ होता और वह छत पर श्वेत पत्थर की भाँति शांत बैठ जाते, उनके हाथ उनकी गोदी में रखे होते थे।





रेलगाड़ी से मैंने एक के बाद एक खेत, उनकी मेड़ पर हरे-हरे वृक्ष जिनकी छांव में बसे गांव, जो एक चित्रों की धारा की तरह तेज़ी से गुजर रहे थे, देखे।

हमारा पहला विराम था बोलपुर...

मेरे पिता ने मेरे घूमने-फिरने पर कोई पाबंदी नहीं लगाई, हालांकि मैं बच्चा था। मैं रेतीली मिट्टी के टीलों में घूमा जहां वर्षा जल ने गहरे खांचे बना दिए थे, पूरा दृश्य लाल बजरी और गिट्टी के पहाड़ों का लघुरूप लग रहा था। मैं इन पत्थरों को इकट्ठा करता और उन्हें अपने प्रिय पिता के पास ले जाता।


वहां और भी बहुत सारी गिट्टियां हैं, हजारों-हजार! मैं जितनी चाहूँ उतनी हर दिन ले आऊँ।



यह बहुत अच्छा होगा! मेरी छोटी पहाड़ियों को इनसे क्यों नहीं सजा देते?





A scenic view of a mountain valley. The foreground is filled with a dense field of pink flowers. The middle ground shows rolling green hills and slopes. In the background, steep, rocky mountains rise, with some peaks partially covered in snow or light-colored rock. The sky is a pale, hazy blue.

जैसे ही हम ऊपर डलहौजी पहुंचे, मैंने बसंत ऋतु में खिले फूलों के सौंदर्य से दमकती पहाड़ियों को देखा।

बकरोटा में जो मकान हमने लिया, वह पहाड़ी की चोटी पर था। यद्यपि मई का महीना निकट आ रहा था, लेकिन यहां अब भी कड़ाके की ठंड थी। इतनी ठंड कि पहाड़ियों के छांव वाले भाग में बर्फ अभी तक नहीं पिघली थी। मेरा कमरा मकान के एक छोर पर था। बिस्तर पर लेटे हुए मैं बिना पर्दे के खिड़कियों से दूर हिमाच्छादित पर्वत शिखरों को तारों के प्रकाश में झिलमिलाते हुए देख सकता था।



सूर्योदय से पूर्व, मेरे पिता अपनी सुबह की प्रार्थना करते। तब हम टहलने के लिए बाहर जाते। मैं बड़ी मुश्किल से उनकी गति के साथ अपनी चाल मिला पाता...और कुछ समय बाद हार जाता और होड़ से पीछे हट जाता। प्रातःकालीन अध्याय और अपने दोपहर के भोजन के बाद मैं पर्वत क्षेत्र को देखने दूर निकल जाता। जैसे ही धुंधलका हो जाता, हम बंगले के बाहर बैठ जाते। स्वच्छ

पर्वत के आकाश पर तारे टिमटिमाने लगते, मेरे पिताजी मुझे तारामंडल दिखाते और खगोल-विज्ञान पर मुझसे बातचीत करते और व्याख्या करते।

मेरे पिताजी कभी मेरी स्वतंत्रता के रास्ते में खड़े नहीं हुए। उनका विश्वास था कि सत्य हृदय से प्यार करने और उस पर विश्वास करने से ही मिल सकता है। उन्होंने मुझे मेरी इच्छा से पहाड़ों पर घूमने की अनुमति दी, सत्य की खोज में अपना पथ खुद चुनने के लिए मुक्त कर दिया। न तो मेरी गलतियाँ करने का खतरा उन्हें डिगा पाया और न ही मेरे दुख का सामना होने के खतरे से वे विचलित हुए। उन्होंने एक मानक पर खड़ा रहना सिखाया लेकिन अनुशासन के डंडे के जोर पर नहीं।

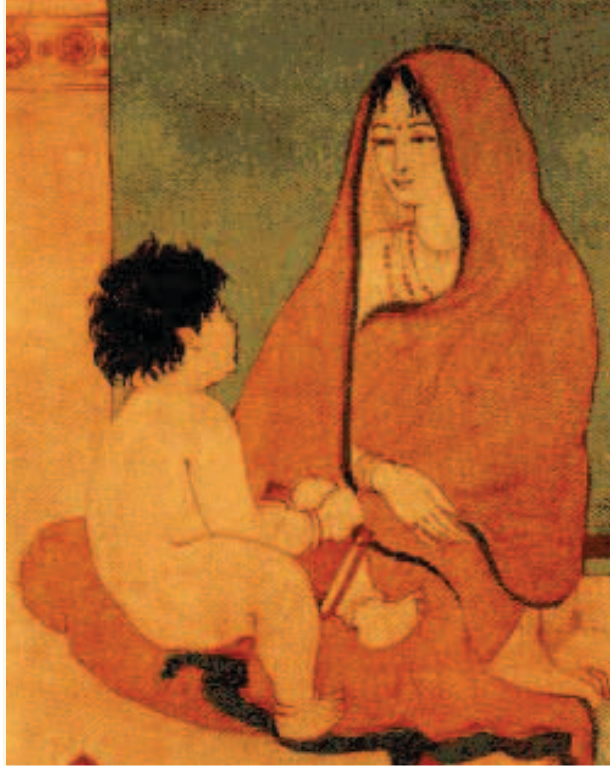
मेरी मां

हां! उस तरह मुझे याद नहीं मेरी मां
पर कभी-कभी बीच खेल में
मेरा शिशु-पालना डुलाती
मां के गाए किसी अपरिचित गीत की कोई
धुन मेरे खिलौनों पर करती है गुंजन



हां, उस तरह मुझे याद नहीं मेरी मां
लेकिन जब किसी भोर पतझर की ऋतु में
पुष्पों की गंध पवन में भर जाती है
मुझको लगता मेरी मां ही बनकर सुगंध
मुझ तक आती है

हां, उस तरह मुझे याद नहीं मेरी मां
लेकिन अपने शयनकक्ष की खिड़की से
जब भी मैं सुदूर नील गगन पर आंख गड़ाता हूं
तब ही मुझको लगता है
मेरी मां की आंखों की टकटकी
फैल गई है मेरे ही आकाश सरीखे मुख पर।



जब मेरी माताजी का निधन हुआ, मैं १४ वर्ष का था। वह लंबे समय से बीमार थीं, और हम जान भी नहीं पाए कि कब उनकी बीमारी ने घातक मोड़ ले लिया।

रात में उनका देहावसान हो गया। हम सीढ़ियों के नीचे अपने कमरे में गहरी नींद सो रहे थे। हमारी पुरानी आया दौड़ती हुई आई, रोई और चीखी। उसकी चीख से हम अर्द्धजाग्रत स्थिति में हो गए थे। मुझे लगा कि मेरे अंदर मेरा हृदय सिकुड़ रहा है। लेकिन यह नहीं समझ सका कि क्या हुआ था। उस समय मुझे पता नहीं चला कि इसका मेरे लिए क्या अर्थ था।

मेरी कविताएँ

मैं विद्यालय नहीं गया, कभी परीक्षा नहीं दी, कभी उत्तीर्ण नहीं हुआ। मुझे नहीं मालूम था कि मैं कहां हूं। मेरा मस्तिष्क इधर-उधर भटकता। मैंने पाया कि तुकबंदियां और छंद साधारण पुरुषों और स्त्रियों ने बनाए हैं। इस खोज से हुई खुशी के साथ मैंने लिखना शुरू कर दिया।

मेरे प्रारंभिक छंद मेरे अपरिपक्व मस्तिष्क और दुस्साहसी विचारों की पैदाइश थे।

अपने काव्यात्मक विकास के लिए मैं अपने भतीजे ज्योति का ऋणी हूं जो मुझसे आयु में बड़े थे। उन्होंने मुझे लिखने के लिए प्रोत्साहित किया और मुझे छंद का अर्थ बतलाया और अपने अग्रज सोमेंद्रनाथ का भी आभारी हूं जिन्होंने मेरे कार्य पर गर्व महसूस किया और इसने उन्हें श्रोताओं के लिए स्थान की तलाश करने को बाध्य किया।

इस दुनिया के दुख और पीड़ा के बारे में मेरे एक पद्य को सुनकर मेरे पिता बहुत प्रसन्न हुए कि दुनिया के दुखों ने उनके सबसे छोटे पुत्र को इतनी जल्दी कविता के बिंदु तक पहुंचा दिया। मेरी पीड़ाओं के अहसास का ईनाम थी, एक हुंडी (चेक)।



नबगोपाल बाबू जो 'नेशनल अखबार' के संपादक थे, मेरे बचकाने प्रदर्शन पर आसानी से समझ न आने वाले एक अप्रचलित शब्द के प्रयोग पर मुस्कराए।

देखिए नबगोपाल बाबू! आपने रबी की कविता सुनी?

बहुत अच्छा! लेकिन है क्या?



हमारे स्कूल अधीक्षक गोविंद बाबू, एक नाटे, मोटे और सांवले रंग के व्यक्ति, स्कूल में साख्र बनाना चाहते थे और उन्होंने मुझे एक कविता लिखने का आदेश दिया। मैंने अपनी कविता अपने सहपाठियों के सामने सुनाई और उनका निष्कर्ष सुना-यह कविता निश्चय ही चोरी की है।



यदि देश का राजा इस भाषा को जानता होता और इसके साहित्य को समझता, तो उसने कवि को पुरस्कार दिया होता। पर ऐसा नहीं है, इसलिए मुझे लगता है कि यह काम मुझे ही करना चाहिए।

यह कहते हुए मेरे पिता ने मुझे हुंडी (चेक) थमा दी।

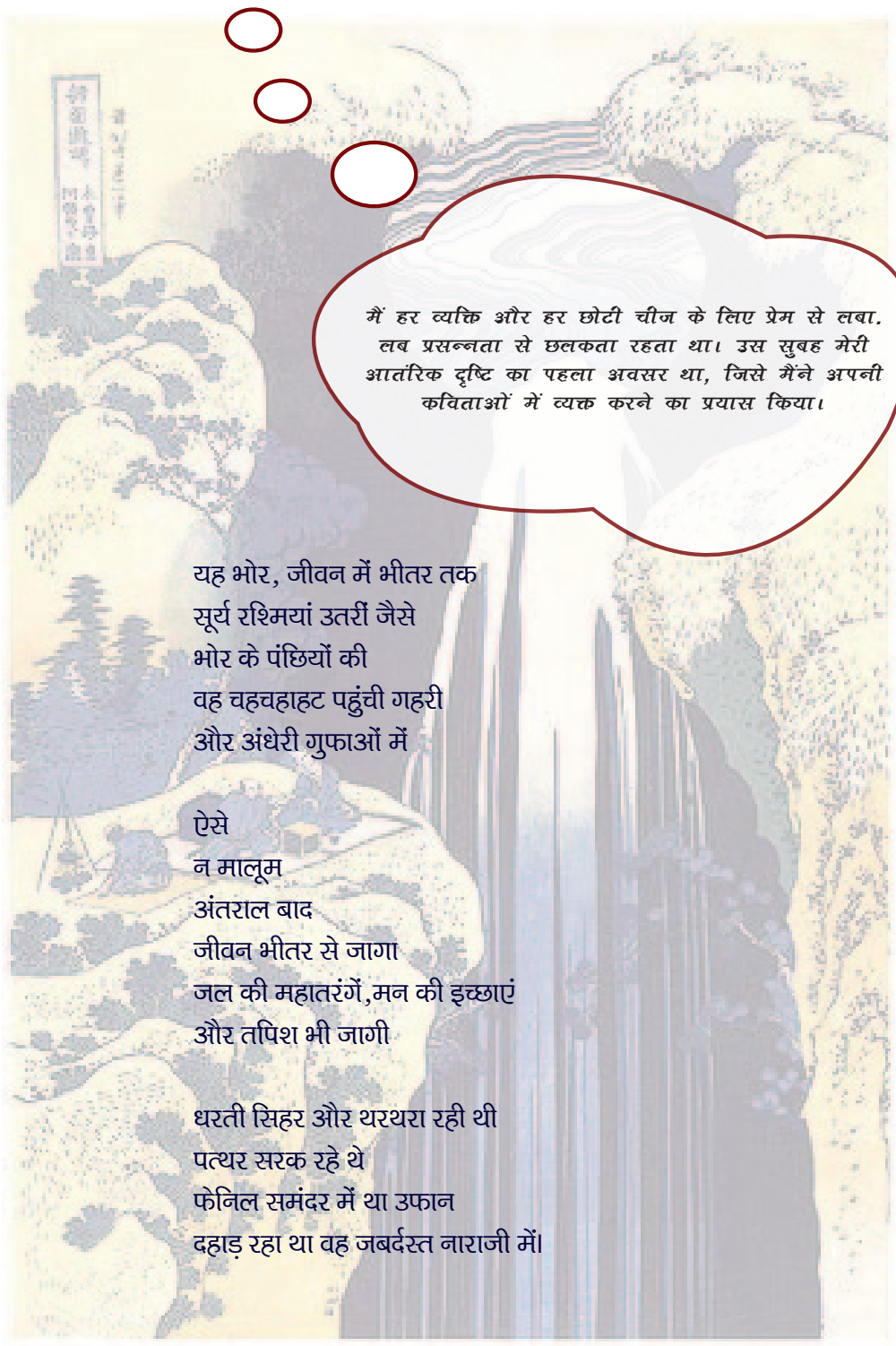


1878 से 1880 के बीच जब मैं इंग्लैंड में था, मैंने एक कविता लिखनी शुरू की जो मेरी यात्रा के दौरान भी जारी रही और लौटने पर समाप्त हुई। उसका शीर्षक था 'भग्न हृदय' अर्थात् टूटा हुआ दिल।

मैं अठारह बरस का था - न बाल्यावस्था थी और न युवावस्था। यह सीमावर्ती आयु सत्य की सीधी किरणों में नहीं चमकती है - इसका परावर्तन इधर-उधर दिखाई देता है, बाकी सब छाया है और संध्याकाल में तारों की छांव में इसकी परछाइयां धुंधली खिंची होती हैं, जो वास्तविक दुनिया को मिथ्याभासी बना देती हैं।

एक सुबह, मैं कोलकता में फ्री स्कूल लेन से सूर्योदय देख रहा था, मुझे ऐसा लगा जैसे एक पर्दा अकस्मात् हट गया हो और हर चीज प्रकाशित हो गई। पूरा दृश्य एक परिपूर्ण संगीत एक चमत्कारिक लय का था।

उसी दिन कविता 'निरझाड़रेर स्वप्नभंग' अथवा झरने का जागरण सचमुच की प्रपातिका की भांति फूट निकली। मैंने तभी से यह अनुभव किया कि यही मेरा लक्ष्य था, जीवन को उसकी पूर्णता, उसके सौंदर्य और उसके पूर्णतम रूप में अभिव्यक्त करना।



मैं हर व्यक्ति और हर छोटी चीज के लिए प्रेम से लबा.
लब प्रसन्नता से छलकता रहता था। उस सुबह मेरी
आंतरिक दृष्टि का पहला अवसर था, जिसे मैंने अपनी
कविताओं में व्यक्त करने का प्रयास किया।

यह भोर, जीवन में भीतर तक
सूर्य रश्मियां उतरीं जैसे
भोर के पंछियों की
वह चहचहाहट पहुंची गहरी
और अंधेरी गुफाओं में

ऐसे
न मालूम
अंतराल बाद
जीवन भीतर से जागा
जल की महातरंगें, मन की इच्छाएं
और तपिश भी जागी

धरती सिहर और थरथरा रही थी
पत्थर सरक रहे थे
फेनिल समंदर में था उफान
दहाड़ रहा था वह जबर्दस्त नाराजी में।

ग्रामीण बंगाल के साथ मेरा संपर्क

जब मैं लगभग 29 वर्ष का था। मेरे पिताजी ने मुझसे पदमा नदी तट से लगे सियालदाह से पतिसर तक की हमारी जमींदारी का जिम्मा संभालने को कहा और मैं पड़ोसी हो गया। जहां समय धीरे-धीरे चल रहा था, जहां आनंद और दुख अपनी सादगी की छायाओं और प्रकाश के साथ मौजूद थे।

वह सियालदाह था जिसने मेरा स्वभाव बनाया। इसलिए कि मैंने यहाँ ग्रामीण जीवन के सभी पक्ष देखे। धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूप से मैंने ग्रामीणों के दुखों और दरिद्रता को समझना शुरू किया तथा इसके बारे में कुछ करने को उद्विग्न हो उठा। इसमें क्या कुछ किया जा सकता है, इस बारे में मैंने सोचना शुरू कर दिया। मुझे नहीं लगा कि बाहर से मदद करना कुछ असर कर पाएगा। मैंने उनके दिमागों को आत्मनिर्भरता की तरफ जागरूक करने का प्रयत्न शुरू कर दिया।

उसी समय की बात है, मैंने प्रिय मित्र जगदीश चंद्र बोस की पत्नी अबाला बोस को लिखा, 'मैं ग्रामीण समाज की समस्याओं में उलझा हुआ हूँ और अपनी जमींदारी में ग्रामीण पुनर्निर्माण का काम करूँगा। कुछ लड़के स्वयंसेवा कर रहे हैं और ग्रामीणों को अपनी शिक्षा, स्वास्थ्य-सफाई और स्वशासन के लिए संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं। ये लड़के सड़कों-पगड़ड़ियों की मरम्मत, तालाबों की खुदाई, नालियां काटने और जंगलों की सफाई जैसे सार्वजनिक कार्य करने की पहल पहले ही कर चुके हैं'।



मानव धर्म

सियालदाह और पतिसर के गांवों में रहते हुए, ग्रामीण जीवन के साथ मैंने सीधा संपर्क बनाया। एक ओर नदियां, हरियाले मैदान, धान के खेत और पेड़ तले माटी की झोपड़ियों का नजारा था। दूसरी तरफ जनता की अंतरकथा थी। अपने कामकाज के चलते मैं उनकी तकलीफों को समझने लगा। जायदाद संबंधी मामलों का हिसाब-किताब रखना, राजस्व संग्रह, जमा खाते और उधार-खाते में मेरी लापरवाही मेरे मस्तिष्क पर भारी पड़ी।

जैसे ही मैं किसी काम में लगता हूं, उसमें डूब जाता हूं। यह मेरा स्वभाव है कि जब भी मैं कोई बीड़ा उठाता हूं, मैं स्वयं को भूल जाता हूं और पूरी शक्ति से कार्य करने का प्रयास करता हूं। मैंने जैसे ही जमींदारी की जटिलताओं को सुलझाया, मुझे नए तरीके निकालने की प्रतिष्ठा मिली। आसपास के जमींदारों ने मेरे तरीके सीखने के लिए मेरे पास अपने आदमी भेज दिए। रिकार्ड रखे जाने के नए तरीके के बारे में शंकाओं के बावजूद, मैंने ऊपर से नीचे तक चीजें बदलने का प्रयास किया। परिणाम संतोषजनक रहा।

मैंने अंततः

अपना धर्म पा लिया - मानवता का धर्म।



मैंने अपना सारा काम उत्साह और आनंद से किया, शायद इसलिए भी कि मैं बाल्यावस्था से अकेलेपन में रहा और यह गांव का मेरा पहला अनुभव था। मैं नवीन लक्ष्य के आनंद से भरा हुआ, संतुष्ट एवं उल्लसित था। ग्रामीणों को परखने और सहायता करने से कुछ भला होने वाला नहीं। मेरी समस्या थी कि कैसे उनमें जीवन की चिंगारी सुलगाई जाए।

हमारी निर्भरता की आदत अज्ञात काल से चली आ रही है। पुराने दिनों में एक धनी व्यक्ति गांव का मुख्य आधार और उसका पथप्रदर्शक हुआ करता था। स्वास्थ्य, शिक्षा और हर चीज उसका दायित्व होती थी। मैंने इस प्रणाली की प्रशंसा की है किन्तु यह भी सुना है कि इससे आम आदमी की आत्मनिर्भरता की संभावनाएं धूमिल हो गईं।

मेरी जमींदारी में, नदी बहुत दूर थी और पानी की कमी एक गंभीर समस्या थी। मैंने दफ्तर से कुष्टिया तक एक सड़क बनवाई और पाया कि ग्रामीणों के लिए यह असहनीय था कि उनके श्रम का मज़ा दूसरे लोग लूटें। इससे तो वे खराब सड़कें और पानी के अभाव की असुविधा में ही पड़े रहना चाहेंगे।



अगर तुम कुआं खोदो तो
मैं इसके लिए सीमेंट ले
आऊंगा।

हम कुआं खोदें और प्यासों को
पानी पिलाने के पुण्य के नाम पर
स्वर्ग तुम जाओ !



हमें सड़क की देखभाल करनी
चाहिए, ताकि भद्रजन आसानी से
आ-जा सकें !

इस सड़क की देखभाल तुम्हारी जिम्मेदारी है। तुम
सब मिल कर आसानी से गड्डों की मरम्मत कर
सकते हो।

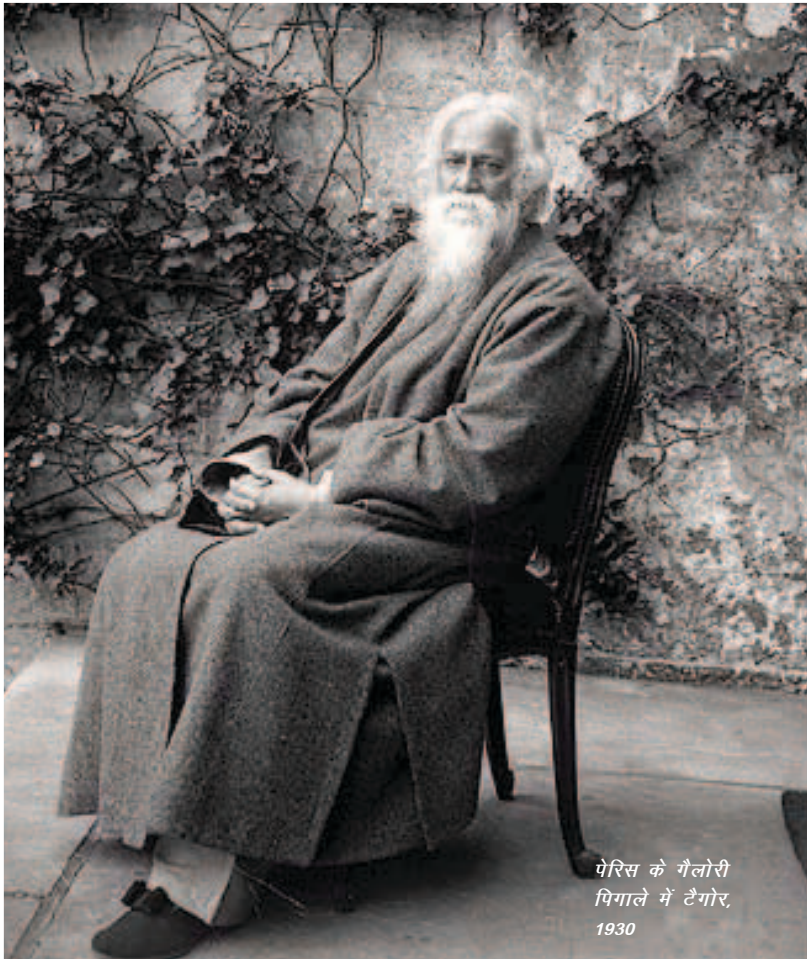
मेरे अवलोकन एवं दृष्टिकोण

मेरे स्कूली दिनों में जिस बात ने मुझे यातना दी, वह यह तथ्य था कि स्कूल में दुनिया जैसी पूर्णता नहीं थी। मेरे लिए स्कूल में उपस्थिति एक बाध्यता थी और यही बाध्यता असहनीय यातना देती थी। मैं स्कूल में आजादी के लिए अपने बरस गिनता रहता था बाद में मुझे लगा कि जो बात मुझे परेशान करती थी या उद्विग्न करती थी वह थी शिक्षा प्रणाली का अ-प्राकृतिक दबाव और यह हर जगह था।



जोड़ासांकों में रवींद्रनाथ को हुए अनुभवों ने उन्हें 'शिक्षा में स्वतंत्रता' के महत्व का आजीवन विश्वास प्रदान किया। उन्होंने सहानुभूति और संवेदनशीलता के विकास के लिए कलाओं तथा एक-दूसरे की संस्कृति एवं प्राकृतिक वातावरण के घनिष्ठ संबंध की अनिवार्यता के महत्व का भी अहसास किया। परिवार की सार्वभौमिक गतिविधियों में सम्मिलित होने में सामान्य या विशिष्ट प्रकार की उन संकुचित स्थितियों का विरोध किया जो मानव को मानव से अलग करती हैं। उन्होंने शिक्षा को अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता बनाए रखते हुए अन्य संस्कृतियों के समृद्ध पक्षों के गुणबोध का साधन माना।

-के.एम.ओ कानेल (2003)



पेरिस के गैलोरी
पिगाले में टैगोर,
1930

में उच्चाकांक्षा के वातावरण में बड़ा हुआ, मानवीय शक्ति के विस्तार की उच्चाकांक्षा। हमने अपनी भाषा में सत्ता की स्वाधीनता खोजी, अपने साहित्य में कल्पना की स्वाधीनता प्राप्त की, अपने धार्मिक पंथों में आत्मा की आजादी हासिल की तथा सामाजिक वातावरण में मेधा की स्वाधीनता को अर्जित किया। इन अवसरों ने मुझे शिक्षा की शक्ति में विश्वास से भर दिया। वह जो जीवन के साथ हमें वास्तविक स्वाधीनता दे सकती है - वह उच्चतम स्वाधीनता जिसका मनुष्य के लिए दावा किया गया है - दुनिया में उसके नैतिक संप्रेषण की स्वाधीनता।

शांतिनिकेतन और शिक्षा का मेरा दर्शन

1901 के दिसंबर में, मैं अपने परिवार के साथ शांति निकेतन में अपने पिताजी के आश्रम गया। यह रचनात्मक राष्ट्रवाद के प्रति मेरा जुड़ाव था।

बोलपुर में ब्रह्मचर्य आश्रम विद्यालय प्रारंभ करना, शिक्षा को अपने हाथों में लेना, उसे यथासंभव स्वदेशी बनाना एक उद्यम था। मेरे पास भाग्यवश पहले से ही एक स्थान था जहां मैं अपना काम शुरू कर सका।

मेरे पिता ने यह एकांत स्थल ईश्वर के साथ समागम के लिए चुना था। उन्होंने इस स्थान को उन लोगों के लिए समर्पित कर दिया था जो अपनी ध्यान-साधना एवं प्रार्थना के लिए तपश्चर्या और निर्जनता तलाशते हैं।

जब मैं यहां आया और अपना नया जीवन शुरू किया, मेरे पास सिर्फ दस लड़के थे।

मेरा पहले से इस क्षेत्र में कोई अनुभव नहीं था।



हमारे आश्रम, के चारों ओर विरल रूप से एक रुक चुकी बढ़वार, खजूर के वृक्षों और दीमक की बांबियों से अटी कंटीली झाड़ियों को छोड़ कर क्षितिज तक खुला विस्तृत ग्रामीण क्षेत्र था। सूने पड़े खेतों से होकर गांव के लोगों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली धूप में झिलमिलाती लाल रेत वाली सड़क गुजरती है। इस सड़क पर आने वाले राही मंदिर का शिखर, ब्रह्मचर्याश्रम का शीर्ष भाग और ग्रामोद्यान और उस इलाके में खड़े साल वृक्ष दूर से ही देख सकते हैं।

मैं चाहता था कि मेरा विद्यालय प्राचीन ऋषि-कुलों जैसा हो जिनके बारे में हम जानते हैं। इनमें कोई विलासितापूर्ण सुविधाएं नहीं होती थीं, निर्धन और धनी समानरूप से तपस्वी की तरह रहते थे। मैं ऐसे सही शिक्षक नहीं ढूंढ सका जो अतीत के आदर्शों के साथ वर्तमान के अभ्यासों को संयोजित कर सकें। मेरी छोटी सी धनराशि से विद्यालय शुरू किया गया, उसे चलाए रखने के लिए मुझे अपनी पुस्तकें और अपने कृति-अधिकार (कॉपी राइट) को बेचना पड़ा।

सबसे पहले मेरा उद्देश्य विशुद्ध रूप से देशभक्ति था, किन्तु कालांतर में यह आध्यात्मिक बन गया। दारिद्र्य हमें जीवन और दुनिया के साथ पूर्ण संपर्क में ला देता है।

मैंने यह महान शिक्षक उपलब्ध कराया - यह सब अर्थात् फर्नीचर और सामग्री से हीन स्थिति - गरीबी के कारण नहीं, अपितु इसलिए कि यह दुनिया के व्यक्तिगत अनुभव की ओर ले जाता है।



बाल्यावस्था से कैशोर्य और फिर कैशोर्य से वयस्कता तक हम विद्या की देवी के भारवाहक (कुली) रहते हैं, अपनी झुकी पीठों पर शब्दों के बोझ लाद कर जाते हुए।

बच्चे जीवन के साथ प्रेम में होते हैं और यह उनका पहला प्रेम होता है। इसके सभी संग और पल उनकी उत्सुक चेतना को आकर्षित करते हैं। क्या हम यकीन के साथ कह सकते हैं कि बुद्धिमानी इस प्रेम का गला नहीं घोंट देगी।

पहली बात मैंने जो की वह थी अपने पुत्र रथी को शहर से एक गांव में ले जाना ताकि उसे उपलब्ध आदिम प्राकृतिक स्वतंत्रता दे सकूं। उसके पास एक नदी है जहां वह तैरे और नौका खेवे, खेतों में अपना समय बिताए और पगडंडी रहित नदी तट की बालू पर दौड़े, भोजन के लिए विलंब से आए और उससे कोई सवाल नहीं किया जाए। इस दुनिया का वास्तविक अनुभव प्राप्त करने के लिए उसके पास इतना बेहतर अवसर है जितना कभी मेरे पास होता था।



1905 आ गया, मैं इस सत्य पर जोर देने से नहीं चूका कि हमें अपने देश को किसी विदेशी से नहीं जीतना है, बल्कि जीतना है अपनी स्वयं की निष्क्रियता से, अपनी स्वयं की निस्संगता से।

मैंने जो काम शुरू किया, वह कविता के लिए शांति निकेतन को देवभूमि बनाने का था। अपने उद्यम की स्थापना और अपनी प्रसन्नता में जिन तत्वों की सहायता चाही, वे छात्रों के मस्तिष्क में मौसमों के गीतों तथा समारोहों को प्रकृति के अनुकूल करना थे।

आश्रम रचनात्मक प्राणशक्ति में विकसित हो गया। विद्यालय छात्रों के मस्तिष्क को अंधश्रद्धा से मुक्त करने के लिए प्रतिबद्ध था जहां वे जातियों में भेद किए बिना मानव मात्र का सम्मान करें।



मुझे इस विषय में कोई अनुभव नहीं था। लेकिन मुझे अपने आप में विश्वास था। मुझमें बच्चों के प्रति सहानुभूति थी। मैंने वह स्थल चुना जहां आकाश क्षितिज तक फैला था, मस्तिष्क अपने स्वयं के स्वप्नों की रचना करने के लिए अपनी निर्भय स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता था। ऐसे में जबकि ऋतुएं मानव बस्तियों में अपने रंगों और सौंदर्य से भर कर आती और जाती रहती हैं।

यहां मैंने कुछ बच्चों को अपने आसपास एकत्र किया और उन्हें पढ़ाया।





मैं उनका सहचर था। मैं उनके लिए गाता, सांगीतिक लड़ियां चुनता, नृत्य-नाटक रचता, इतना ही नहीं उनके प्रदर्शनों में भाग भी लेता। मैंने उन्हें महाकाव्य सुनाए और..ऐसा था हमारे विद्यालय का प्रारंभ।

मेरा मानना था कि शिक्षा जीवन का हिस्सा होनी चाहिए और उसे इससे अलग न रखा जाए। इतना ही नहीं उसमें किसी प्रकार की कोई दुरुहता न हो। मेरे लिए जितना संभव था बच्चों को स्वतंत्रता थी। वे अपनी इच्छा से जो चाहें, जब तक चाहें कर सकते थे। मैंने कोशिश की कि सभी गतिविधियों को उनके लिए और अधिक रुचिकर बनाया जाए।

अवचेतन मस्तिष्क चेतन मस्तिष्क की तुलना में अधिक सक्रिय होता है, इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि उनको सभी प्रकार की ऐसी गतिविधियों में लगाया जाए जो उनके मस्तिष्क को उत्तेजित कर शनैः-शनैः उनकी अभिरुचि जागृत करें।

मैंने अपने विद्यार्थियों में प्रकृति प्रेम तथा जीवन का तत्त्व बनाने वाली हर वस्तु के प्रति प्रेम को अंतर्निवेश (दिमाग में बैठाने) का प्रयत्न किया। हमने हर बदलती ऋतु पतझड़, ग्रीष्म, वर्षा, शरद तथा शीत शिशिर उत्सव मनाया। शिक्षा आनंद की एक गतिविधि हो गई। एक ऐसा वातावरण पैदा कर दिया जाता जो उन्हें प्रकृति के साथ संगति में रहने की प्राकृतिक अंतःप्रेरणा प्रदान करता।





मैं संगीत संध्याएं कराता था-जो मात्र संगीत कक्षाएं नहीं होती थीं। वे लड़के जिनका संगीत के प्रति कोई विशेष अनुराग नहीं था, उत्सुकतावश हमारे गानों को बाहर से सुनते थे और धीरे-धीरे अंदर खिंचे चले आते थे। मैं बड़े कलाकारों को वहां आने और रहने के लिए अमंत्रित करता था और वे तभी से अपना काम शुरू कर देते थे। विद्यार्थी उन्हें देखते कि किस प्रकार उनकी महान कृतियां विकसित हो पाती हैं।

मैंने सदैव प्रयत्न किया कि यूरोप और सुदूर-पूर्व से प्रवक्ता यहां बुलाऊं और अपने साथ रखूं। हमारे विद्यार्थी विदेशी अतिथियों के साथ बहुत सहज रहते थे। मेरा मत था कि मस्तिष्क को हर पक्ष में स्वतंत्रता ढूंढनी चाहिए और मुझे विश्वास है कि हमारे बच्चों ने देश, प्रजाति, धर्म और संप्रदायों के अवरोधों से मुक्ति पा ली है।

महत्वपूर्ण यह था कि विद्यार्थियों ने स्वशासन के माध्यम से अनुशासन और जिम्मेदारियों को भी समझा। लड़कों ने जो समितियां बनाई थीं वे उनके विद्यालय जीवन के उन सभी पक्षों से निपटने में समर्थ थीं जिनमें लड़के खुद भी व्यापक रुचि रखते थे।



1921 शांति निकेतन, मेरा ग्रामीण पुनर्निर्माण विद्यालय - एल्महर्स्ट के साथ

मैंने अमेरिकी कृषि वैज्ञानिक लियोनार्ड एल्महर्स्ट को ग्रामीण पुनर्निर्माण के बारे में एक पत्र लिखा, क्योंकि उन्होंने भारत में काम करने में बहुत रुचि दिखाई थी।

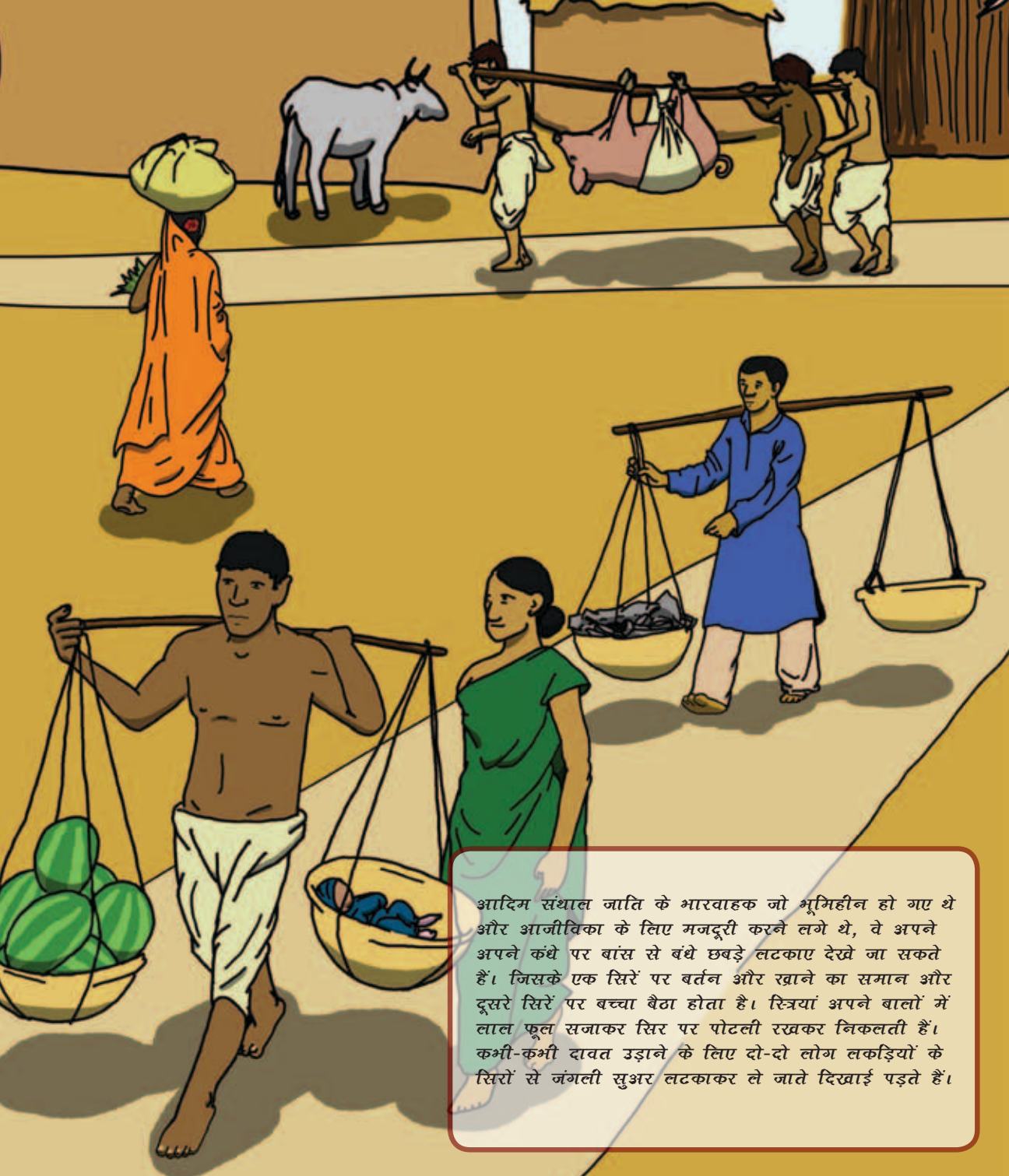
“मुझे लगता है कि पश्चिम बंगाल में शांति निकेतन के आसपास के गांव मृतप्राय हो रहे थे। इतने पर भी उनमें से सभी हिन्दू, मुस्लिम और आदिवासी संथाल संकेत देते थे कि कभी वे एक शालीन आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति और एक ऐसी संस्कृति का पालन कर रहे थे जिसका अब अस्तित्व नहीं रहा है। ग्रामीण भी अपनी खुद सहायता करने के योग्य लगते हैं। जब मैं युवा था, मेरे पिता ने मुझे पूर्व बंगाल में अपनी पारिवारिक संपदा का प्रभार सौंप दिया और वहां मैंने अपने अनुभवों का परीक्षण किया। कुछ वर्ष पहले सुरुल गांव के पास शांति निकेतन स्कूल से डेढ़ मील की दूरी पर मैंने एक खेत खरीदा ताकि दिमागी खदबदाहट को प्रयोगों में बदल सकूं। आप कहते हैं कि आपने १९१७ में भारतीय गांव और उनकी समस्याओं को देखा है और उससे आप आकर्षित हुए। भारत आइये और इन खेतों में रहिये। पता लगाने का प्रयास कीजिए क्या हो रहा है, और समस्या का कारण क्या है? अपने पांव पर खड़ा होने के लिए ग्रामीणजनों को स्वसहायता की क्षमता अर्जित करने में क्या सहायता की जा सकती है। यदि आप कर सकें तो मेरे कुछ कर्मचारियों और छात्रों को प्रशिक्षण दीजिए। क्या आप आएंगे? तो क्यों नहीं कल साथ ही जल विहार पर चलें?”

एम्हर्स्ट का निर्वचन

“नवंबर 1921, मैं बोलपुर पहुंचा और टैगोर, जिन्हें स्नेहवश गुरुदेव कहा जाता था, से मिलवाने के लिए ले जाया गया। आम के पेड़ के नीचे दयालु वृद्ध कवि बैठे थे जो स्वागत के सुखद शब्दों से ओतप्रोत थे। हम साथ मिलकर बैठे और इस योजना पर विचार-विमर्श किया। वे बोले, ‘इस बात के लिए जैसे हम वर्षों से प्रतीक्षा करते रहे हैं’।

उसके बाद मैं कुछ लोगों के साथ सुरुल फार्म पर अपनी योजना लिए उद्देश्यपूर्ण कार्यवाई के लिए पहुंचा। फरवरी, 1922 में गुरुदेव के फार्म पर आवास बनाया जिसमें एक छोटा सा कर्मचारी दल और कालेज छात्र थे जिनमें से सभी ने कहा था कि वे किसान बनना चाहते हैं। हमने अपने शौचालय बनाए, बाग मकान और कार्यशालाएं बनाईं, उपद्रवी बंदरों को पराजित किया और बस गए। कुछ महीनों के बाद इसे ग्रामीण पुनर्निर्माण संस्थान नाम दिया, जो बाद में टैगोर द्वारा श्रीनिकेतन कर दिया गया जिसका संस्कृत में अर्थ है ‘अनुकंपालय’।

एक शिक्षक के रूप में अपने अनुभव और गांव के लड़कों के साथ शांति निकेतन में हमारे काम के अध्ययन से टैगोर को यह विश्वास हो गया था कि भारत में ग्रामीण बच्चों के लिए प्रकृति और जीवन के साथ दुनिया के सीधे संपर्क पर आधारित ग्रामीण सौंदर्य एवं समस्याओं से नए रूप का विद्यालयी शिक्षण निकाला जा सकता है।”



आदिम संथाल जाति के भारवाहक जो भूमिहीन हो गए थे और आजीविका के लिए मजदूरी करने लगे थे, वे अपने अपने कंधे पर बांस से बंधे छबड़े लटकाए देखे जा सकते हैं। जिसके एक सिरे पर बर्तन और खाने का सामान और दूसरे सिरे पर बच्चा बैठा होता है। स्त्रियां अपने बालों में लाल फूल सजाकर सिर पर पोटली रखकर निकलती हैं। कभी-कभी दावत उड़ाने के लिए दो-दो लोग लकड़ियों के सिरो से जंगली सुअर लटकाकर ले जाते दिखाई पड़ते हैं।

टैगोर द्वारा प्रेरित.... 1916 में प्रकाशित शांति निकेतन में लिखी अपनी पुस्तक में डब्लू.डब्लू पियर्सन

"ऐसा नहीं लगता कि जैसे आश्रम लड़कों के प्रशिक्षण के लिए बहुत अधिक दूर और आश्रमात्मक होगा, जिन्हें विद्यालय छोड़ने पर आधुनिक दुनिया में संघर्ष करना होगा? क्या वस्तुतः हम नहीं कह सकते हैं कि यहां वे वह हासिल कर सकते हैं जिसकी आधुनिक दुनिया में सर्वाधिक जरूरत है। दिमागी शांति की वह संपदा जिसकी उस समय जीवन को संतुलन देने में जरूरत है, जब उसे ध्यानाकर्षणों की भीड़ से गुजर कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना होता है। जो कुछ भी हो, शिक्षा में इस परीक्षण का व्यवहारिक परिणाम शिक्षा के आधुनिक तरीकों के समृद्धतम पक्षों के साथ पुरानी हिन्दू शिक्षण प्रणाली की श्रेष्ठतम परंपराओं के संयोजन का प्रयास है। इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता। यही आदर्श उंचा है। यह आदर्श क्या है, किस प्रकार स्कूल के लड़के और अध्यापक इनको कार्यरूप में लाने का प्रयत्न करें, इस बारे में और अधिक कहने दीजिए।

विद्यालय का बाहरी पक्ष पाश्चात्य दृष्टि से बिल्कुल उपयुक्त नहीं दिखेगा। पश्चिम में शिक्षण संस्थानों के कुशल तथा महंगे उपादानों पर जोर देना, वहां के शिक्षण संस्थाओं का चारित्रिक लक्षण है, जो भारत में कभी स्वीकृत नहीं हुआ है यहां सादगीपूर्ण रहन-सहन को वास्तविक शिक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्वों में से एक माना गया है। लड़कों द्वारा अपने खुद के दैनिक जीवन में प्रयुक्त सभी भवनों में अधिकतम सादगी पाई जाती है।



जब छोटे बच्चे आदर्श अपनाते हैं और उसे कार्यरूप देते हैं तब इसके बारे में हमेशा एक नूतनता रहती है जो स्वस्फूर्त और वास्तविक सृजन के आनंद से भरपूर होती है। लड़के खुद के लिए सोचने और लिखने के लिए प्रोत्साहित होते हैं और उनमें से एक या दो, जिन्होंने हस्तलिखित पत्रिकाओं पर व्याख्यात्मक चित्रण किया हो, वे सच्ची योग्यता वाले चित्रकार सिद्ध हुए हैं।



कभीकभार पूरे विद्यालय के लिए एक या कई दिनों के लिए किसी ऐतिहासिक अभिरुचि के स्थान पर आमोद-यात्राएं आयोजित की जाती हैं। दिन में खुले आकाश के नीचे गायन या खेल-कूद को कार्यक्रम का मुख्य भाग बनाया जाता है। इसमें कुछ अध्यापक कहानी-सुनाने के साथ समय व्यतीत करते हैं। विशेषकर चांदनी रातों में बहुत से लड़के शिक्षकों के साथ पदयात्राओं पर निकल जाते हैं और इससे शिक्षकों एवं छात्रों के बीच संबंध गहरा और सुदृढ़ हो जाता है। अध्यापक छात्रों के साथ एक ही शयन कक्ष में रहते हैं, तथा इस प्रकार अपने काम में परस्पर सहायता करते हैं और अपने दैनिक जीवन में हिस्सेदारी कर पाते हैं।



अपने खुद के मामलों का समाधान करने का जिम्मा बहुधा बच्चों को ही सौंपा जाता है। स्कूल के विभिन्न वर्गों की खुद की संपत्तियां होती हैं। आश्रम में सभी छात्र साधारण सभाएं आयोजित करते हैं जिनमें समूचे स्कूल को प्रभावित करने वाली समस्याओं को विचार-विमर्श के लिए उठाया जाता है। परीक्षाओं के दौरान लड़कों को विश्वास के आधार पर खुद पर ही छोड़ दिया जाता है। जब कोई परीक्षा होती है, लड़के यहां-वहां अपने उत्तर लिखते दिखाई देते हैं, यहां तक कि पहुंच से दूर किसी ऊंचे पेड़ की शाखा ही क्यों न हो।"

सत्यजीत रे

"मैं शांति निकेतन में बिताए अपने तीन वर्षों को जीवन के सर्वाधिक फलप्रद वर्ष मानता हूं। शांति निकेतन ने पहली बार भारतीय और सुदूर पूर्व की चित्रकला की भव्यता के प्रति मेरी आंखें खोल दीं। उस समय मैं पूरी तरह पाश्चात्य चित्रकला, संगीत और साहित्य के आधिपत्य के अधीन था। शांति निकेतन ने मुझे पूर्व और पश्चिम का संयुक्त उत्पाद बना दिया, जो अब मैं हूं।

सत्यजीत रे चित्रकारों, साहित्यिकों, संगीतकारों, वैज्ञानिकों और चिकित्सकों के एक जाने-माने परिवार में 1921 में जन्मे थे। उन्होंने अपनी माता तथा स्वर्गीय पिता के मित्र रवींद्रनाथ ठाकुर के प्रोत्साहित करने पर उनके स्कूल में प्रवेश लिया। उन्होंने शांति भवन के कला भवन में चित्रण का प्रशिक्षण पाया। शांति निकेतन में ही सत्यजीत ने महान चित्रकार गुरु नंदलाल बोस से चित्रण सीखा जो आधुनिक भारत में चित्र कला के पथ-प्रदर्शक थे। एक अन्य शिक्षक विनोद बिहारी मुखर्जी थे, जिन्होंने सत्यजीत रे पर बहुत प्रभाव डाला।

रे में अलग तरह के आधुनिकतावादी केलिग्राफी तत्वों ने प्रवेश किया। चित्रण में अपनी सहज मेधा के साथ श्री रे ने कालांतर में अपने भावप्रदर्शी चित्रों और ग्राफिक अभिकल्पनों में इस तत्व को विकसित एवं समाविष्ट किया।"

—दिलीप बोस





अमर्त्य सेन

"खुद शांति निकेतन में शिक्षित होने के कारण मैं टैगोर को एक शिक्षाविद के रूप में देखता हूं। वह विद्यालय विभिन्न तरीकों से असाधारण था। असंगति यह थी कि वे कक्षाएं जिनमें प्रयोगशाला की जरूरत होती है, वे खुले में होती थीं (जब भी मौसम इसकी अनुमति दे)। कोई बड़ी बात नहीं कि रवींद्रनाथ टैगोर के इस विश्वास के बारे में हमने सोचा कि कोई भी व्यक्ति प्रकृति व्यवस्थापन में रहने से लाभान्वित होता है (हममें से कुछ इस सिद्धांत के बारे में तर्क करते हैं), प्रतिरूपात्मक रूप में हमने खुले में पढ़ाई को अत्यंत आकर्षक और सुखद माना।

शैक्षणिक और विशिष्ट रूप से, हमारा विद्यालय पूरी तरह सही नहीं था (प्रायः हमारी परीक्षाएं नहीं होती थी), और सामान्य शैक्षणिक स्तर के द्वारा वह कोलकाता के बेहतर स्कूलों से होड़ करने की स्थिति में नहीं आ पाता। लेकिन इस मामले में कुछ उल्लेखनीय बात थी जिनमें कक्षा के विचार-विमर्श का परंपरागत भारतीय साहित्य से समकालीन साहित्य की ओर तथा शास्त्रीय सोच की तरफ या फिर चीन, जापान या कहीं और की संस्कृति की ओर मुड़ जाना था। विद्यालय के विभिन्न समारोह भारत को समय-समय पर जकड़ने वाले सांस्कृतिक रूढ़िवाद और प्रथकतावाद के प्रखर विरोधी थे।"

अशोक सरकार.....

शांतिनिकेतन के पाथा भवन में रहकर पढ़ाई की और अब वह
अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी के शिक्षक परिषद (फैकल्टी) के सदस्य हैं।

“प्रथम अध्याय: अमरुद के पेड़ पर चढ़ना

नवंबर १९५९ की एक ठंडी सुबह, जब ओस की बूंदों ने घास को ढका हुआ था, एक साढ़े तीन साल का बालक स्कूल-पूर्व शिक्षा एवं खेलकूद केंद्र की आनंद पाठशाला जाना शुरू करता है।

पहले ही दिन, शिक्षिकाओं में से एक प्रीती माशी ने उससे पूछा कि क्या वह प्रांगण के बीच खड़े अमरुद के पेड़ पर चढ़ सकता है? उसने उत्तर दिया ‘नहीं’। प्रीती माशी ने उसे बताया कि केवल एक सप्ताह पहले पाठशाला आया दुर्बा पेड़ पर चढ़ना जानता है और उसे भी जल्दी ही इसे सीख लेना चाहिए।

आनंद पाठशाला वृक्षों से घिरा एक दो मंजिला भवन है, एक छोटा उथला तालाब है, दौड़ने, लड़ने, खेलने और सोने के लिए पर्याप्त खुला स्थान है। लड़के ने बड़ी शीघ्रता से बहुत सी चीजें सीख लीं - पेड़ पर चढ़ना, फल तोड़ना, छोटे पौधों की देखभाल करना, फूलों से मालाएं बनाना, वर्षा में भीगकर खुश होना, कुत्ते-बिल्लियों और चिड़ियों को खाना खिलाना, टैगोर के कुछ गाने गाना, कागज और अन्य लोगों के कपड़ों पर चित्र बनाना, कविता और थोड़ा बहुत लिखना।”



सीखने की परिधि

दो वर्ष बाद, वह लड़का टैगोर के स्कूल से जुड़ गया। कक्षाएं वृक्षों के नीचे लगती थीं - छात्र अर्धवृत्ताकार बैठते थे। प्रत्येक शिक्षक के पास एक ऐसा स्थान था, बेदी, लिहाज़ा छात्र एक कक्षा से दूसरी कक्षा में कूद जाया करते थे। अर्धवृत्ताकार बैठक व्यवस्था के अपने लाभ थे - हर कोई एक-दूसरे को देख सकता था, लेकिन शरारत करना या छुपना आसान नहीं था। सबसे अच्छी बात यह थी कि छात्रों में कोई विभाजन नहीं था। एक हल्का श्यामपट्ट था, जिसे छात्र खुद ही स्टैंड पर खड़ा कर देते थे।

सेवा के लिए विद्यालय

बाद के वर्षों में, बालक सेवा विभाग का सचिव नियुक्त हो गया। उसका काम था छात्रों में से स्वयंसेवकों का एक दल जुटाना, और उसके बाद तीन महीने तक शांति निकेतन के निवासियों के पास जाकर ऐसी वस्तुएं एकत्र करना जिन्हें वे छोड़ना चाहते थे, और फिर उन वस्तुओं को संथाल गांवों में वितरित करना।

यह प्रत्येक सप्ताहांत किया जाता था। कार्य श्रमसाध्य था लेकिन एक महत्वपूर्ण आत्मानुभव छोड़ गया कि संथाल उपहार नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि रात्रिकालीन विद्यालय दोबारा शुरू किया जाए।

टैगोर के विद्यालय के आकर्षण

जैसे-जैसे बालक बड़ा हुआ, उसे टैगोर के विद्यालय के वास्तविक आकर्षण का अनुभव हुआ। एक यह कि सांस्कृतिक एवं कला की कक्षाएं बिना किसी अंतराल के कक्षा 11 तक चलती रहीं।

दूसरा था कक्षा के बाहर चीजें सीखना। जब सुस्थापित भरतनाट्यम् नृत्यांगना रुकमणी देवी अरुंडेल ने जब अपने दल के साथ शांति निकेतन का भ्रमण किया, तब स्कूल के छात्रों ने ही सारा आयोजन किया।

इस बालक ने उनसे बात कर तीन प्रदर्शनों में से प्रत्येक के लिए मंच की ऊंचाई, चौड़ाई, प्रकाश, पंखों के बारे में उनकी जरूरतों को समझा और उसके अनुरूप कार्य किया।

तीसरा आकर्षण था किसी कार्य अथवा गतिविधि के लिए बिना बुलाए ही कहीं भी और किसी भी समय पहुंच जाने की स्वतंत्रता। विद्यालय के छात्रों के साथ विशेष सम्मान और प्रेम से व्यवहार किया जाता था। उनकी स्वतंत्रता और कई बार धृष्टता पर भी कोई प्रतिवाद नहीं करता था। चौथा आकर्षण था गैर-स्पर्धी संस्कृति जो शांतिनिकेतन के संस्थागत ताने-बाने में गहराई से समाई हुई थी। इसी का असर था कि किसी भी छात्र ने कभी किसी विषय में अपने प्रदर्शन को लेकर तनाव अथवा अवसाद महसूस नहीं किया। यह मान लिया गया और आसानी से स्वीकार कर लिया गया कि हर कोई प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से अच्छा नहीं हो सकता।





एक विश्व के रूप में स्कूल

टैगोर के विद्यालय में बड़े होने के कई आयाम हैं। पहला विज्ञान, कला, संगीत, साहित्य, रंगमंच से फिल्मों तक सृजन के विभिन्न पक्षों से रुबरु होना।

दूसरा, विद्यालय सिर्फ तकनीकी दृष्टि में सीखने का अनुभव ही नहीं, बल्कि अनुभव को प्रकट करने का स्थान भी था।

तीसरा, यह विचार कि एक विद्यालय या विश्वविद्यालय कर्मक्षेत्र से आगे बढ़ सकता है और जीवन क्षेत्र हो सकता है।

चौथा, यह आत्मनानुभव कि विद्यालय, विश्वविद्यालय, संस्थान के अन्य अंग, समारोह, विस्तार कार्यक्रम आदि सभी एक-दूसरे के पूरक हैं और एक दूसरे से अलग नहीं हैं।

नवंबर, 1959 की उस ठंडी सुबह को बीते कई वर्ष गुज़र चुके हैं, जब बालक ने पहली बार आनंद पाठशाला में कदम रखा था। आज वह सफेद बालों वाला एक भद्रपुरुष है, जो टैगोर के विद्यालय के उन जादू भरे दिनों को ऐसे याद करता है, जैसे कल ही की बात हो।

सुप्रियो टैगोर

अपने पड़ बाबा (ग्रेट ग्रांड अंकल) टैगोर के विद्यालय से प्राचार्य के रूप में सेवानिवृत्त हुए, आदिवासी बच्चों और क्षेत्र के अनाथ बच्चों को शिक्षित करने के लिए एक विद्यालय शिशु तीर्थो को स्थापित किया और अब उसका संचालन करते हैं।

"गुरुदेव के आदर्शों और उनके दृष्टिकोण का ईमानदारी से अनुसरण किया जाए तो सभी बच्चे ज्ञानार्जन के आनंद से भर जाएंगे। यह आनंद प्रकृति सौंदर्य एवं प्रेम से ओतप्रोत वातावरणीय सहयोग और समरसता पैदा करने से आएगा।

जिज्ञासा एवं आत्म-अभिव्यक्ति की भावना को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। हर शिशु इस भावना को लेकर पैदा होता है।

टैगोर वर्तमान पीढ़ी के लिए सच्चे अध्यापक, दार्शनिक और दिग्दर्शक हैं क्योंकि उनका विश्वास था कि किताबी रुझान और प्रतियोगी परीक्षाएं समाप्त की जानी चाहिए, ताकि छात्र प्रकृति से सीखें और एक आध्यात्मिक स्तर पर शिक्षा का उच्चतर स्तर हासिल कर सकें।"





टैगोर का शिक्षा दर्शन: हमारे

बच्चों को यथासंभव स्वतंत्र बनाओ : बच्चों को खोजबीन करने और पूछने की आजादी दो, रचनात्मक गतिविधियों में व्यस्त होने तथा शाला में (रचनात्मक कार्यों में) आजादी से अपनी कल्पना का प्रयोग करने दो। छात्रों को अपने शिक्षकों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा को आनंद की गतिविधि के रूप में देखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

अध्यायों को आनंद लेने योग्य बनाएं: अध्यायों को निर्भयता के वातावरण में और जब भी संभव हो खुले में संपन्न कराएं। प्रकृति भ्रमण को एक नियमित अभ्यास के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। मौसम के समारोहों से सिखाओ- वह चाहे बसंत (बसंतोत्सव), ग्रीष्म, वर्षा, शरद-शीत-शिशिर (पौष-मेला) हो, अथवा फसल कटने पर आयोजित कोई उत्सव। उत्सव मनाने और सीखने का सदैव एक कारण हो सकता है।

अध्यायों को जीवन-केंद्रित बनाएं: बच्चों को अपने आसपास की स्थितियों की खोजबीन करने दें और आजीविकाओं कृषि, उद्योग एवं सामुदायिक कार्यों को व्यवहारिक तरीके से सीखने दें- गुड़ाई, बुवाई, फसल कटाई, छंटाई, पशुपालन और छपाई, बर्तन निर्माण, कताई-बुनाई, बड़ईगीरी या कंप्यूटर पर कार्यशालाओं में भाग लेकर।

शारीरिक दंड पर प्रतिबंध: टैगोर मानते थे कि दंड देने और उससे पैदा होने वाले भय से अच्छे छात्रों का निर्माण नहीं होगा। अनुशासनहीनता को उदाहरण देकर या आत्मानुशासन लागू करके ही सही किया जा सकता है।



विद्यालयों के लिए मूल्यवान सबक

व्यक्ति को किसी गलत कार्य पर आत्मालोकन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। छात्रों को सिखाओ कि स्वतंत्रता से जिम्मेदारी आती है। उदाहरण के लिए, शांति निकेतन में विचार सभाएं छात्रों द्वारा संचालित होती थीं जो किसी गलत करनीया अनुशासनहीन व्यवहार पर उपयुक्त आदेश पारित करती थी।

विवेक साधना: स्वाद, श्रवण, दृष्टि, गंध एवं स्पर्श (जिह्वा, कान, आंख, नासिका और त्वचा) से होने वाले अनुभव को विकसित एवं तीव्रतर करने पर जोर दिया जाए। उदाहरण के लिए बच्चों को धूप की रौशनी और चांदनी में भ्रमण पर ले जाया जाए और दोनों स्थितियों में दृष्टि और स्पर्श से पहचानने को प्रोत्साहन दिया जाए। आंचलिक खाद्य मेले, विज्ञान एवं गणित मेले अपवाद के बजाय एक नियम बन जाए।

नए खेल: छात्र की प्राकृतिक उत्सुकता को सक्रिय बनाने और उसमें संलग्न करने के लिए दिमाग को चौकन्ना बनाया जाए। कागज की रूप-रचनाओं के माध्यम से दिमागी गणित, ज्यामितीय, विज्ञान, इतिहास या अन्य विषय को खेल के माध्यम से समझने की संभावनाएं हैं।

विचार-विमर्श: रटी गई विद्या से दिमाग पर पड़ने वाले गलत दबाव को समाप्त किया जाए। उदाहरण के लिए, समय-समय पर छात्रों के वृत्त समूह बनाए। दो समूहों को विचार-विमर्श के लिए प्रोत्साहित करें। ज्ञान तो आ ही जाएगा।

सामान्य समीक्षा: प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के बीच बिना परीक्षाओं के आकलन किया जाए।

(योगदान शांति निकेतन से सुप्रियो टैगोर)



टैगोर के आदर्शों की महत्ता

(अमर्त्य सेन ने 'टैगोर और उनका भारत' में लिखा)

शिक्षा एवं स्वतंत्रता

टैगोर ने भारत की सामाजिक और आर्थिक संबद्धताओं को बुनियादी शिक्षा की कमी के बहुत मूलभूत कारणों के रूप में पहचाना:

“मेरी नजर में भारत के हृदय पर संतापों का जो अंबार लगा है, उसकी एकमात्र जड़ अशिक्षा है। जाति-विभाजन, धार्मिक झगड़े काम के प्रति अरुचि, अनिश्चित आर्थिक स्थितियां - ये सब एक ही तत्व पर केंद्रित हैं।

टैगोर केवल इस बात के लिए चिंतित नहीं थे कि देश में व्यापक अवसर हों (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जहां विद्यालय बहुत कम हैं) बल्कि इसलिए भी कि विद्यालय खुद भी अधिक जीवंत और आनंदप्रद हों। उन्होंने खुद जल्दी ही विद्यालय छोड़ दिया था, विरक्ति के कारण, और कभी प्रमाण पत्र अर्जित करने के लिए परेशान नहीं हुए। उन्होंने लड़के-लड़कियों के लिए सह-विद्यालयों को किस तरह और अधिक आकर्षक तथा उत्पादनशील बनाया जाना चाहिए, इस पर विस्तार से लिखा। शांति निकेतन में खुद के सह शिक्षात्मक विद्यालय में कई प्रगतिशील लक्षण थे। वहां अनुशासन तथा स्पर्धात्मक श्रेष्ठता से कहीं अधिक आत्मप्रेरण और बौद्धिक जिज्ञासा पर जोर दिया जाता था।”

आज का भारत

टैगोर केवल निरक्षरता और शिक्षा की उपेक्षा को भारत के लगातार सामाजिक पिछड़ेपन का कारण नहीं समझते थे, बल्कि भारत में आर्थिक विकास की पहुंच एवं संभावना के अवरोध के रूप में भी देखते थे। जैसा कि ग्रामीण भारत पर अपने लेख में उन्होंने जोर देकर स्पष्ट किया है। काश कि स्थानीय दरिद्रता को मिटाने में एक वृहत्तर प्रतिबद्धता तथा अविलंबता की भावना को सशक्त अनुभूति की तरह समझा गया होता। बावजूद इसके टैगोर देश में लोकतंत्र के बचे रहने और यहां की प्रेस और वैचारिक स्वतंत्रता जिसे स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति ने बरकरार रखा में थोड़ा संतोष पा ही लेते।

टैगोर की चिंता थी कि लोग मशीनों के नियंत्रण और प्रभुत्व में न आ जाएं। लेकिन वे आधुनिक तकनीकी के बेहतर उपयोग के विरोधी नहीं थे। 'सभ्यता में संकट' में उन्होंने लिखा - मशीन पर स्थापित प्रभुता के माध्यम से बरतानिया ने अपने विशाल साम्राज्य पर अपनी प्रभुसत्ता को और अधिक मजबूत किया है। लेकिन उस प्रभुता को उसने एक सीलबंद किताब की तरह रख दिया है और इस बेबस मुल्क को उस तक पहुंचने के अधिकार से वंचित रखा है। खींदनाथ की पर्यावरण में गहरी रुचि थी - वह विशेष रूप से वातावरण के वनरहित होने को लेकर चिंतित थे और 1928 की शुरुआत में उन्होंने वृक्षारोपण उत्सव शुरू किया था।

जहाँ मन हो भय से मुक्त

जहाँ मन हो भय से मुक्त
और सिर गर्व से ऊँचा
जहाँ ज्ञान का हो मुक्त संचार
जहाँ न बंटी हो दुनिया टुकड़ों में
आपस में खड़ी की गयी दीवारों से।
जहाँ निकले शब्द सच की गहराई से
जहाँ मेहनत करने वाले हाथ बढ़ते हों पूर्णता की ओर।
जहाँ सीधी सोच का प्रवाह न हो खोया
महज आदत के सूने रेगिस्तान में।
जहाँ तुम्हारी दिखायी हुई राह पर आगे बड़े मन
लांघे सोच और कृति की सीमाएं
उस आजादी के स्वर्ग में,
मेरे पिता, हो सुबह मेरे देश की।

‘टैगोर के लिए सर्वाधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण बात यह थी कि लोग जीवन को स्वतंत्रता और तर्क के साथ जी सकें, उनकी राजनीतिक और सांस्कृतिक, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, परम्परा और आधुनिकता को आस्था के इसी प्रकाश में देखा जाना चाहिए।’

- अमर्त्य सेन, ‘टैगोर और उनका भारत’



Acknowledgements

1. **Swati Ghosh, Tagore Researcher, Santiniketan** - for sharing a wealth of information on Rabindranath Tagore's life and vision.
2. **Supriyo Tagore, retired Principal of Visva-Bharati** - for outlining ways in which Rabindranath Tagore's vision of education can be realised by educators.
3. **Tapan Kumar Basak, Head of Rabindra Bhavan Archives, Visva-Bharati, Santiniketan** - for permitting us to use photographs from the Archives.
4. **Nilanjan Choudhury, Leah Verghese, Soumita Basu and Akashi Kaul, Azim Premji Foundation** - for their editorial inputs.
5. **Ashok Sircar, former student of Patha Bhawan, Santiniketan and Faculty Member at Azim Premji University**- for his invaluable guidance and for sharing his wonderful memories of Santiniketan.
6. **Language editing - Pradeep Pandit** (Senior Journalist and Sahitya Academy Awardee), **Editorial Input - Rajesh Utsahi & Ramnik Mohan** (Teachers Portal of India Hindi)

Images

1. **Introduction:** Kolkata Bourne 1860: <http://sesquicentennial.blogspot.in/2010/04/early-life-of-rabindranath-tagore-contd.html>.
2. **Santiniketan and My Philosophy of Education, Inspired by Tagore: WW Pearson, and Where The Mind Is Without Fear:** Mukul Chandra Dey's early watercolour sketches of the Ashram have been used in the book with permission from his grandson, Satyasree Ukil.
3. **My Observations and Views:** Rabindranath Tagore at the Galerie Pigalle, Paris, 1930 Courtesy - <http://www.antarasdiary.com/photography-rabindranath-tagore/> Courtesy - <http://www.outlookindia.com/article.aspx?262326>.
4. **I Cannot Remember My Mother:** Woman with her child in her lap: A 1913 illustration by Asit Kumar Haldar for "The Beginning", a prose-poem in *The Crescent Moon*.
5. **My Poetry:** The waterfall of Amida behind the Kiso Road by Katsushika Hokusai http://commons.wikimedia.org/wiki/Category:Katsushika_Hokusai
6. All the other photographs in the book are from the Rabindra Bhavan Archives, Visva-Bharati, Santiniketan.

Bibliography

1. Amartya Sen, *The Argumentative Indian*. Published by Penguin, 2005.
2. Amartya Sen, *Tagore and His India* - [Nobelprize.org](http://www.nobelprize.org/nobel_prizes/literature/laureates/1913/tagore-article.html). 2 Nov 2011 URL: http://www.nobelprize.org/nobel_prizes/literature/laureates/1913/tagore-article.html.
3. Dilip Basu, *Biography of Satyajit Ray (1921-1992)*. URL: <http://satyajitray.ucsc.edu/biography.html>.
4. K. M. O'Connell, (2003) 'Rabindranath Tagore on education', *The Encyclopaedia of Informal Education*, URL: <http://www.infed.org/thinkers/tagore.htm>.
5. Leonard Elmhirst, *The Poet and The Plowman*. Published by Visva-Bharati Publishing Department, 1975.
6. Uma Das Gupta, ed., *Rabindranath Tagore - My Life In My Words*. Published by Penguin India, 2006.
7. Uma Das Gupta, ed., *The Oxford India Tagore: Selected Writings on Education and Nationalism*. Published by Oxford University Press, 2009.
8. WW Pearson, *Santiniketan*. Published by Macmillan, 1916.

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का स्पष्ट उद्देश्य है - न्यायसंगत, समानता पर आधारित, मानवीय तथा सतत समाज के निर्माण में उल्लेखनीय योगदान देना। हमारा प्रयास है कि शिक्षा तथा उससे संबंधित विकास के क्षेत्रों में बेहतर कार्य में सहायक होने वाले ज्ञान के सृजन के साथ-साथ प्रतिभाओं का विकास भी हो। विश्वविद्यालय शिक्षा तथा विकास के क्षेत्रों में सीखने-सिखाने के एक जीवंत और बहुआयामी वातावरण के माध्यम से उत्कृष्ट नेतृत्व विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध है। विश्वविद्यालय अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के काम का एक अभिन्न अंग है। विश्वविद्यालय फाउंडेशन की क्षेत्रीय संस्थाओं और उनके कार्यक्रमों के साथ गहराई से जुड़कर काम करता है। उसकी यह पहल उसे भौतिक वास्तविकताओं और व्यवहारिकताओं से सीधे-सीधे जोड़ती है।

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन भारत में शिक्षा की गुणवत्ता और समानता के लिए बड़े पैमाने पर गहराई के साथ संस्थागत प्रभाव डालने के लिए कार्यरत है। यह शिक्षा तथा उससे जुड़े विकास के अन्य क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, पोषण, शासन और पर्यावरण में किया जा रहा है। 2001 में अपनी स्थापना से लेकर अब तक फाउंडेशन के कार्यक्रम देश के 13 राज्यों के 20000 से अधिक स्कूलों तथा 25 लाख बच्चों तक पहुंचा है।

एक न्यायसंगत, समानता पर आधारित, मानवीय और सतत समाज के लिए

अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की 'व्यक्ति एवं विचार' श्रृंखला, उन बहुत से समाज सुधारकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं शिक्षाशास्त्रियों के विचारों, जीवन और कार्यों पर शोध का प्रयास है जिन्होंने हमारे जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। हमें आशा है कि इस प्रयास के दौरान हम अपने दृष्टिकोण एवं दर्शन को मूल आकार देने वाले विचारों को समझने और उस पर विमर्श में संलग्न रहने का एक मंच विकसित कर पाएंगे।

हम रवींद्रनाथ टैगोर के शिक्षा संबंधी विचारों और दर्शन पर आधारित एक सचित्र रचना के साथ यह श्रृंखला प्रारंभ कर रहे हैं। टैगोर सर्वकालिक शिक्षक हैं और उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं, जितने उनके जीवनकाल में थे।

